‘परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति’ : एक अंश

- फ्रेडरिक एंगेल्स

पति-पत्नी के बीच यौन-प्रेम एक नियम के रूप में केवल उत्पीड़ित वर्गो में, अर्थात आजकल केवल सर्वहारा वर्ग में ही, सम्भव हो सकता है, और होता भी है- चाहे इस सम्बन्ध को अधिकृत रूप से मान्यता प्राप्त हो या न हो। परन्तु यहां क्लासिकीय एकनिष्ठ विवाह की सारी बुनियाद ही ढह जाती। जिस सम्पति की रक्षा करने के लिये और उसे अपने पुत्रों को विरासत में सौंपने के लिये एकनिष्ठ विवाह और पुरुष के आधिपत्य की स्थापना की गयी थी, उसका यहां पूर्ण अभाव है। इसलिये पुरुष का आधिपत्य स्थापित करने के लिये यहां कोई प्रेरणा नहीं रहती। इससे भी बड़ी बात यह है कि इसके लिये साधन भी नहीं रहते। इस आधिपत्य की रक्षा करते हैं पूंजीवादी कानून - परन्तु वे तो केवल मिल्की वर्गों के लिये और सर्वहाराओं के साथ उनके कारबार तय करने के लिये होते हैं। कानून की शरण लेने में पैसा लगता है और पैसा मजदूर के पास नहीं होता। इसलिये अपनी पत्नी के साथ जहां तक उसके सम्बन्ध का सवाल है, मजदूर के लिये कानून का कोई महत्व नहीं होता। यहां बिल्कुल दूसरे ढंग के निजी और सामाजिक सम्बन्धों का निर्णायक महत्व होता है। इसके अतिरिक्त, बड़े पैमाने के उद्योग ने चूंकि नारी को घर से श्रम के बाजार में और कारखाने में पहुंचा दिया है, और अक्सर उसे कुनबा-परवर बना दिया है, इसलिये सर्वहारा के घर में पुरुष के आखिरी अवशेषों का आधार भी पूरी तरह खतम हो जाता है यदि कुछ बच रहता है तो वह है स्त्रियों के प्रति क्रूरता, जो एकनिष्ठ विवाह की स्थापना के बाद से पुरुष की प्रकृति का एक अंग है। इस प्रकार, सर्वहारा परिवार शुद्धतः एकनिष्ठ परिवार नहीं रह जाता, यहां तक कि उन सूरतों में भी, जहां पति-पत्नी में उत्कट प्रेम होता है और दोनों पक्ष एक दूसरे के प्रति बिल्कुल वफादार होते हैं, और जहां चाहे उन्हें सारे सांसारिक तथा आध्यात्मिक वरदान प्राप्त हों, वहां भी एकनिष्ठ विवाह का शुद्ध रूप नहीं मिलता। इसलिये एकनिष्ठ विवाह के सदा-सर्वदा साथ चलनेवाली उन दो प्रथाओं की - हैटेरिज्म और व्यभिचार की - यहां लगभग नगण्य भूमिका रह जाती है। यहां नारी ने वास्तव में पति से अलग हो जाने का अधिकार फिर से प्राप्त कर लिया है, और जब पुरुष और स्त्री साथ-साथ नहीं रह सकते, तो वे अलग हो जाना बेहतर समझते हैं। सारांश यह कि सर्वहारा विवाह व्युत्पत्तिमूलक अर्थ में एकनिष्ठ होता है, परन्तु ऐतिहासिक अर्थ में नहीं।

निस्संदेह हमारे न्यायशास्त्रियों का यह मत है कि कानून बनाने में जो प्रगति हुई है, उससे नारी के लिये शिकायत करने के कारण अधिकाधिक खतम होते गये हैं। कानून की आधुनिक सभ्य प्रणालियां इस बात को अधिकाधिक मानती जा रही हैं कि पहले तो, यदि विवाह को सफल होना है, आवश्यक है कि दोनों पक्ष स्वेच्छा से आपस में विवाह करने के राजी हों, और दूसरे यह कि विवाह काल में दोनों पक्षों के समान अधिकार और समान कर्तव्य होने चाहिए। परन्तु यदि इन दोनों सिद्धान्तों पर सचमुच पूरी तरह अमल किया जाता, तो नारियों जो कुछ चाहती है, वह सब उन्हें मिल जाता।

यह विशुद्ध वकीलों जैसी दलील ठीक उसी प्रकार की है जिस प्रकार की दलील समय-समय पर उग्रवादी जनतन्त्रवादी पूंजीवादी सर्वहारा को मर्यादा के अन्दर रहने का आहान करते हुए देता है। यह माना जाता है कि दोनों पक्षों के बीच श्रम-संविदा स्वेच्छा से की जाती है। परन्तु इस संविदा को स्वेच्छापूर्वक किया गया इसलिये समझा

जाता है कि कानून की निगाह में **कागज पर** दोनों पक्ष समान हैं। एक पक्ष को अपनी भिन्न वर्ग स्थिति के कारण जो शक्ति प्राप्त है, जो दबाव वह दूसरे पक्ष पर डाल सकता है, उससे, दोनों पक्षों की असली आर्थिक स्थिति से, कानून को कोई वास्ता नहीं है। और कानून की निगाह में तो जब तक श्रम-संविदा बरकरार है, और जब तक दोनों में से कोई एक पक्ष खुद अपने अधिकारों को नहीं त्याग देता, तब तक दोनों पक्षों के समान अधिकार रहते हैं। यदि वास्तविक आर्थिक परिस्थिति मजदूर को अपने अन्तिम प्रतीयमान समानाधिकारों को त्याग देने को विवश कर देती है तो भी इसमें कानून कुछ भी नहीं कर सकता है।

जहां तक विवाह का सम्बन्ध है, प्रगतिशील से प्रगतिशील कानून भी बस इतनी सी बात से पूरी तरह संतुष्ट हो जाता है कि दोनों पक्ष जाकर सरकारी दफ्तर में यह दर्ज करा दें कि उन्होंने स्वेच्छा से विवाह किया है। कानून के पर्दे के पीछे जहां असली जीवन चलता है, वहां क्या होता है, यह स्वैच्छिक संविदा किस प्रकार सम्पन्न होती है, इससे कानून को और कानूनविदों को कोई गरज नहीं। फिर भी कानूनविद यदि विभिन्न कानूनों की थोड़ी-सी भी तुलना करके देखें, तो उन्हें तुरन्त मालूम हो जायेगा कि इस स्वैच्छिक संविदा का वास्तविक अर्थ क्या है। उन देशों में जहां कानून के अनुसार बच्चों को अपने माता-पिता की जायदाद का एक हिस्सा मिलता है, और जहां माता-पिता उनको यह हिस्सा देने से इनकार नहीं कर सकते-यानी जर्मनी में, उन देशों में, जहां फ्रांसीसी कानून चलता है, आदि में - वहां सन्तान को विवाह के मामले में माता-पिता की मंजूरी लेनी पड़ती है। जो देश अंग्रेजी कानून के मातहत हैं, उनमें कानून की दृष्टि से माता-पिता की रजामंदी तो जरूरी नहीं है, परन्तु वहां माता-पिता को वसीयत के जरिये अपनी संपत्ति किसी के भी नाम लिख देने का, और अपनी संतान को एक भी पैसा न देने का पूर्ण अधिकार होता है। अतएव यह स्पष्ट है कि जहां तक उन वर्गों का सम्बन्ध है, जिनके सदस्यों को अपने मां-बाप से कुछ सम्पति मिलने को होती है उनमें, इसके बावजूद - बल्कि कहना चाहिए कि इसी कारण से - इंगलैंड और अमरीका में, विवाह की स्वतंत्रता फ्रांस या जर्मनी से जरा भी अधिक नहीं है।

विवाहित अवस्था में, पुरुष और नारी की कानूनी समानता के बारे में भी स्थिति इससे अच्छी नहीं है। पुरानी सामाजिक परिस्थितियों की विरासत के रूप में स्त्री और पुरुष के बीच कानून की नजर में जो असमानता है, वह स्त्रियों के आर्थिक उत्पीड़न का कारण नहीं, बल्कि परिणाम है। पुराने सामुदायिक कुटुम्ब में, जिसमें अनेक दम्पति और उनकी संताने शामिल होती थीं, स्त्रियां घर का प्रबंध किया करती थीं, और यह काम उतना ही महत्वपूर्ण, सार्वजनिक और सामाजिक दृष्टि से आवश्यक धंधा माना जाता था, जितना कि भोजन जुटाने का वह काम जो पुरुषों को करना पड़ता था। पितृसत्तात्मक परिवार की स्थापना से यह परिस्थिति बदल गयी, और एकनिष्ठ वैयक्तिक परिवार की स्थापना के बाद तो और भी बड़ा परिवर्तन हो गया। घर का प्रबंध करने के काम का सार्वजनिक रूप जाता रहा। अब वह समाज की चिन्ता का विषय न रह गया। यह एक **निजी काम** बन गया। पत्नी को सार्वजनिक उत्पादन के क्षेत्र से निकाल दिया गया, वह घर की मुख्य दासी बन गयी। केवल बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग ने ही उसके लिए - पर अब भी केवल सर्वहारा स्त्री के ही लिए - सार्वजनिक उत्पादन के दरवाजे फिर खोले हैं, पर इस रूप में कि जब नारी अपने परिवार की निजी सेवा के अपने कर्तव्य का पालन करती है, तब उसे सार्वजनिक उत्पादन के बाहर रहना पड़ता है और वह कुछ कमा नहीं सकती, और जब वह सार्वजनिक उत्पादन में भाग लेना और स्वतंत्र रूप से अपनी जीविका कमाना चाहती है, तब वह अपने परिवार के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करने की स्थिति में नहीं होती। और जो बात कारखाने में काम करनेवाली स्त्री के लिए सत्य है, वह डाक्टरी

या वकालत करनवाली स्त्री के लिए भी, यानी सभी तरह के पेशों में काम करनेवाली स्त्रियों के लिए सत्य है। आधुनिक वैयक्तिक परिवार नारी की खुली या छिपी हुई घरेलू दासता पर आधारित है। और आधुनिक समाज वह समवाय है जो वैक्तिक परिवारों के अणुओं से मिलकर बना है। आज अधिकतर परिवारों में, कम से कम मिल्की वर्गों में, पुरुष को जीविका कमानी पड़ती है और परिवार का पेट पालना पड़ता है, और इससे परिवार के अन्दर उसका आधिपत्य कायम हो जाता है और उसके लिए किसी कानूनी विशेषाधिकार की आवश्यकता नहीं पड़ती है। **परिवार में पति बुर्जुआ होता है, पत्नी सर्वहारा की स्थिति में होती है।** परन्तु उद्योग-धन्धों के संसार में सर्वहारा जिस आर्थिक उत्पीड़न के बोझ के नीचे दबा हुआ है, उसका विशिष्ट रूप केवल तब स्पष्ट होता है, जब पूंजीपति वर्ग के तमाम कानूनी विशेषाधिकार हटाकर अलग कर दिये जाते हैं और कानून की नजरों में दोनों वर्गों की पूर्ण समानता स्थापित हो जाती है। जनवादी जनतंत्र दोनों वर्गों के विरोध को मिटाता नहीं है, इसके विपरीत, वह तो उनके लिए लड़कर फैसला कर लेने के वास्ते मैदान साफ कर देता है। इसी प्रकार आधुनिक परिवार में नारी पर पुरुष के आधिपत्य का विशिष्ट रूप, और उन दोनों के बीच वास्तविक सामाजिक समानता स्थापित करने की आवश्यकता तथा उसका ढंग केवल उसी समय पूरी स्पष्टता के साथ हमारे सामने आयेंगे, जब पुरुष और नारी कानून की नजर में बिल्कुल समान हो जाएंगे। तभी जाकर यह बात साफ होगी कि स्त्रियों की मुक्ति की पहली शर्त यह है कि पूरी नारी जाति फिर से सार्वजनिक उत्पादन में प्रवेश करे, और इसके लिये यह आवश्यक है कि समाज की आर्थिक इकाई होने का वैयक्तिक परिवार का गुण नष्ट कर दिया जाये।

* * *

इस प्रकार, मोटे तौर पर मानव विकास के तीन मुख्य युगों के अनुरूप, हमें विवाह के भी तीन रूप मिलते हैः जांगल युग में यूथ-विवाह, बर्बर युग में युग्म-विवाह और सभ्यता के युग में एकनिष्ठ विवाह और उसके साथ जुड़ा हुआ व्यभिचार तथा वेश्यावृत्ति। बर्बर युग की उन्नत अवस्था में, युग्म-परिवार तथा एकनिष्ठ विवाह के बीच के दौर में, हम दासियों पर पुरुषों का आधिपत्य और बहु-पत्नी प्रथा पाते हैं।

जैसा कि हमारे पूरे वर्णन से प्रकट होता है, इस क्रम में दिखाई देनेवाली प्रगति के साथ यह खास बात जुड़ी हुई है कि स्त्रियों से तो यूथ-विवाह के काल की यौन-स्वतंत्रता अधिकाधिक छिनती जाती है, पर पुरुषों से नहीं छिनती। पुरुषों के लिए तो, वास्तव में, आज भी यूथ-विवाह प्रचलित है। नारी के लिए जो बात एक ऐसा अपराध समझी जाती है जिसका भयानक सामाजिक और कानूनी परिणाम होता है, वही पुरुष के लिए एक सम्मानप्रद बात, या अधिक से अधिक एक मामूली-सा नैतिक धब्बा समझा जाता है जिसे वह खुशी से सहन करता है। पुराने परम्परागत हैटेरिज्म को माल का वर्तमान पूंजीवादी उत्पादन जितना ही बदलता और अपने रंग में ढालता जाता है, यानी जितना ही वह खुली वेश्यावृत्ति में परिणत होता जाता है, उतना ही समाज पर उसका अधिक खराब असर पड़ता है। और वह स्त्रियों से ज्यादा पुरुषों पर खराब असर डालता है। स्त्रियों में वेश्यावृत्ति केवल उन्हीं अभागिनों को पतन के गढ़े में धकेलती है जो उसके चंगुल में फंस जाती है, और इन स्त्रियों का भी उतना पतन नहीं होता जितना आम तौर पर समझा जाता है। परन्तु दूसरी ओर, वेश्यावृत्ति सारे पुरुष संसार के चरित्र को बिगाड़ देती है। और इस प्रकार दस में से नौ उदाहरणों में विवाह के पहले सगाई की लंबी अवधि कार्यतः दाम्पत्य बेवफाई की ट्रेनिंग की अवधि बन जाती है।

अब हम एक सामाजिक क्रांति की ओर अग्रसर हो रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप एकनिष्ठ विवाह का वर्तमान आर्थिक आधार उतने ही निश्चित रूप से मिट जायेगा, जितने निश्चित रूप से एकनिष्ठ विवाह के अनुपूरक का, वेश्यावृत्ति का आर्थिक आधार मिट जायेगा। एकनिष्ठ विवाह की प्रथा एक व्यक्ति के -और वह भी एक पुरुष के - हाथों में बहुत-सा धन एकत्रित हो जाने के कारण और इस इच्छा के फलस्वरूप उत्पन्न हुई थी कि वह यह धन किसी दूसरे की सन्तान के लिये नहीं, केवल अपनी सन्तान के लिये छोड़ जाये। इस उद्देश्य के लिए स्त्री की एकनिष्ठता आवश्यकता थी, पुरुष की नहीं। इसलिए नारी की एकनिष्ठता से पुरुष के खुले या छिपे बहुपत्नीत्व में कोई बाधा नहीं पड़ती थी। परन्तु आनेवाली सामाजिक क्रांति स्थायी दायाद्य धन-सम्पदा के अधिकतर भाग को - यानी उत्पादन के साधनों को - सामाजिक सम्पति बना देगी और ऐसा करके सम्पति की विरासत के बारे में इस सारी चिन्ता को अल्पतम कर देगी। पर एकनिष्ठ विवाह चूंकि आर्थिक कारणों से उत्पन्न हुआ था, इसलिये क्या इन कारणों के मिट जाने पर वह भी मिट जायेगा?

इस प्रश्न का यह उत्तर शायद गलत नहीं होगाः मिटना तो दूर, एकनिष्ठ विवाह तब जाकर ही पूर्णता प्राप्त करने की ओर बढ़ेगा। कारण कि उत्पादन साधनों के सामाजिक स्वामित्व में रूपान्तरण के फलस्वरूप उजरती श्रम, सर्वहारा वर्ग भी मिट जायेगा, और उसके साथ-साथ यह आवश्यकता भी जाती रहेगी कि एक निश्चित संख्या में - जिस संख्या को हिसाब लगाकर बताया जा सकता है - स्त्रियां पैसा लेकर अपनी देह को पुरुषों के हाथों में सौंप दें। तब वेश्यावृत्ति का अन्त हो जायेगा, और एकनिष्ठ विवाह प्रथा मिटने के बजाय, पहली बार पुरुषों के लिए भी वास्तविकता बन जायेगी।

बहरहाल, तब पुरुषों की स्थिति में बहुत बड़ा परिवर्तन हो जायेगा। परन्तु स्त्रियों की, **सभी** स्त्रियो की स्थिति में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन होगा। उत्पादन साधनों पर सामाजिक स्वामित्व हो जाने से वैक्तिक परिवार समाज की आर्थिक इकाई नहीं रह जायेगा। घर का निजी प्रबंध एक सामाजिक धंधा बन जायेगा। बच्चों का लालन-पालन और शिक्षा एक सार्वजनिक विषय हो जायेगा। समाज सब बच्चों का समान रूप से पालन करेगा, चाहे वे विवाहित की सन्तान हों या अविवाहित की। इस प्रकार, आजकल सबसे ज्यादा जो बात किसी लड़की को उस पुरुष के सामने स्वतंत्रतापूर्वक आत्मसमर्पण करने से रोकती है, जिसे वह प्यार करती है, यानी यह चिन्ता कि ''इसका परिणाम क्या होगा'' और जो ऐसे मामलों के लिये वर्तमान समाज में सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक बात - नैतिक व आर्थिक दोनों ही - बन जाती है, वह चिन्ता तब बिल्कुल नहीं रहेगी। प्रश्न उठ सकता है कि तब क्या इस बात के लिये काफी आधार नहीं तैयार हो जायेगा कि धीरे-धीरे अनियंत्रित यौन-व्यापार बढ़ने लगे और उसके साथ-साथ कौमार्य-रक्षा, नारी-कलंक, आदि के बारे में जनमत अधिक उदार हो जाये? और अन्तिम बात यह कि क्या हम यह नहीं देख चुके हैं कि आधुनिक संसार में एकनिष्ठ विवाह और वेश्यावृत्ति दो विपरीत वस्तुएं होते हुए भी, एक ही सामाजिक व्यवस्था के दो छोर मात्र हैं और इसलिये एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते? क्या यह सम्भव है कि वेश्यावृत्ति तो मिट जाये, पर वह अपने साथ एकनिष्ठ विवाह को न लेती जाये?

यहां एक नया तत्व काम करने लगता है। यह एक ऐसा तत्व है जो एकनिष्ठ विवाह के विकसित होने के समय यदि था तो केवल बीज-रूप में ही था। हमारा मतलब व्यक्तिगत यौन-प्रेम से है।

मध्य-युग के पहले व्यक्तिगत यौन-प्रेम जैसी कोई चीज थी ही नहीं। जाहिर है कि तब भी व्यक्तिगत सौंदर्य, अंतरंग साहचर्य, समान रुचि, आदि से नारी और पुरुष में परस्पर सम्भोग की इच्छा उत्पन्न होती थी, और उस वक्त भी नर-नारी इस प्रश्न की ओर से बिल्कुल उदासीन नहीं थे कि वे किस व्यक्ति के साथ यह सबसे अंतरंग सम्बन्ध स्थापित करते हैं। परन्तु उसमें और हमारे काल के यौन-प्रेम में बहुत अन्तर है। प्राचीन काल में शादियां बराबर माता-पिता की इच्छा से होती थी; लड़के-लड़कियां चुपचाप उन्हें मान लेते थे। प्राचीन काल में पति-पत्नि के बीच जो प्रेम थोड़ा-बहुत देखने में आता भी था, वह मनोगत प्रवृत्ति नहीं, वरन् वस्तुगत कर्तव्य था, वह विवाह का कारण नहीं, उसका पूरक था। आधुनिक अर्थ में प्रेम-व्यापार प्राचील काल में केवल अधिकृत समाज से बाहर ही घटित होता था। थियोकिटस और मोसकस ने, या 'डाफनिस और क्लोए' में लांगस ने जिन गड़रियों के प्रेम के गीत गाये हैं और जिनके विरह-मिलन के दुख-सुख का वर्णन किया है, वे दास मात्र थे, उनका राज-काज में कोई भाग नहीं था, क्योंकि वह केवल स्वतंत्र नागरिकों को क्षेत्र था। दासों के सिवा, यदि कहीं प्रेम-व्यापार घटित होता था तो केवल प्राचील काल के पतनोन्मुख संसार के विघटन के फलस्वरूप ही होता था, और वह भी उन स्त्रियों के साथ होता था जो अधिकृत समाज के बाहर समझी जाती थीं - यानी हैटेराओं, अर्थात् विदेशी या स्वतंत्र कर दी गयी स्त्रियों के साथ होता था। एथेंस में यह बात उसके पतन के आरम्भ में देखी गयी थी और रोम में उसके सम्राटों के काल में। स्वतंत्र नागरिकों में यदि कभी पुरुष और नारी के बीच सचमुच प्रेम होता था, तो केवल विवाह का बंधन तोड़कर व्यभिचार के रूप में। प्राचीन काल में प्रेम के उस प्रसिद्ध कवि, वृद्ध एनाकियोन को ही लीजिये। हमारे अर्थ में यौन-प्रेम का उसके लिये इतना कम महत्व था कि वह इस बात तक से उदासीन था कि माशूक औरत है या मर्द।

प्राचीनकालीन सरल यौन-इच्छा, eros से, हमारा यौन-प्रेम बहुत भिन्न है। एक तो, हमारा यौन-प्रेम यह मानकर चलता है कि यह प्रेम दोतरफा है; जिससे प्रेम किया जाये उससे प्रेम मिलता भी है। इस तरह औरत का दर्जा मर्द के बराबर होता है, जबकि प्राचीनकालीन eros में औरत की हमेशा राय भी नहीं ली जाती थी। दूसरे, यौन-प्रेम इतना तीव्र और स्थायी रूप धारण कर लेता है कि दोनों पक्षों को लगता है कि यदि उन्होंने एक दूसरे को न पाया, या वे एक दूसरे से अलग रहे, तो यह यदि सबसे बड़ा नहीं, तो बहुत बड़ा दुर्भाग्य अवश्य होगा। एक दूसरे को पाने के लिये वे भारी खतरों का सामना करते हैं, यहां तक कि अपने जीवन को भी संकट में डालने में नहीं हिचकिचाते। प्राचीन काल में यह सब, अधिक से अधिक, केवल विवाहेतर यौन-व्यापार में होता था। और अन्तिम बात यह है कि अब सम्भोग का औचित्य अथवा अनौचित्य एक नये नैतिक मानदंड से निश्चित होने लगता है। अब केवल यही सवाल नहीं किया जाता कि सम्भोग वैध है अथवा अवैध, बल्कि यह भी किया जाता है कि वह पारस्परिक प्रेम का परिणाम है या नहीं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि सामन्ती या पूंजीवादी व्यवहार में दूसरे नैतिक मानदंडों का जो हाल हुआ उससे बेहतर इस नये नैतिक मानदंड का नहीं हुआ - अर्थात इसकी भी उपेक्षा कर दी गयी। परन्तु अगर उसका हाल बेहतर नहीं हुआ तो बदतर भी नहीं हुआः अन्य मानदंडों के समान यह मानदंड भी सिद्धांत रूप में, यानी कागजी तौर पर मान्य है। और इससे अधिक फिलहाल आशा भी नहीं की जा सकती ।

जिस बिन्दु पर प्राचीन काल में यौन-प्रेम की ओर प्रगति बीच में रुक गयी थी, मध्य काल में उस बिन्दु से वह प्रारम्भ हुई। हमारा मतलब विवाहेतर प्रेम-व्यापार से है। नाइटों के प्रेम का हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं जिसने

''उषा के गीतों'' को जन्म दिया था। प्रेम के इस रूप का उद्देश्य था विवाह-सम्बन्ध को तोड़ डालना। इसलिये, ऐसे प्रेम के और उस प्रेम के बीच बहुत चौड़ी खाई थी, जो विवाह-सम्बन्ध की नींव बनने वाला था। नाइटों के प्रेम के काल में यह खाई कभी नहीं पाटी जा सकी। उच्छृंखल लैटिन लोगों को छोड़कर सदाचारी जर्मनों को लीजिये, तो भी हम पाते हैं कि 'नीबेलंगेनलीड' में क्राइमहिल्ड यद्यपि गुप्त रूप ये सिगफ्राइड से उतना ही प्रेम करती थी, जितना वह खुद उससे करता था, फिर भी जब गुंथर ने उसे बताया कि उसने क्राइमहिल्ड का विवाह एक नाइट के साथ करने का वचन दे दिया है और उसका नाम तक नहीं बताया, तो क्राइमहिल्ड ने केवल यह उत्तर दिया-

''आपको मुझसे पूछने की आवश्यकता नहीं है, आप जैसा आदेश देंगे, मैं सदा वैसा ही करूंगी। मेरे प्रभु, आप जिसे भी मेरे लिये चुनेंगे, उसी को मैं सहर्ष अपना पति स्वीकार करूंगी।''[1]

इस बात का क्राइमहिल्ड को कभी खयाल तक नहीं आया कि इस मामले में उसके प्रेम का भी कोई महत्व हो सकता है। गुंथर ने ब्रुनहिल्ड को देखा तक नहीं था, तब भी वह उसे विवाह में मांग बैठा। इसी प्रकार, एटजेल ने क्राइमहिल्ड को बिना देखे ही उससे विवाह करना चाहा। और 'गुडरुन'[2] नामक महाकाव्य में भी यही होता है। उसमें आयरलैंड का सिगबांट नार्वेवासिनी ऊटा से विवाह करना चाहता था, हेगेलिंग हेटेल आयरलैंड की हिल्डा को विवाह में मांगता है, और अन्त में, मोरलैंड का सिगफ्राइड, ओर्मनी का हार्टमुट तथा जीलैंड का हेरविग, तीनों ही गुडरुन को विवाह में मांगते हैं; यहां पहली बार ही यह होता है कि गुडुरुन अपनी इच्छा से हेरविग को वर चुन लेती है। सामान्यतः प्रत्येक युवा राजकुमार के लिये उसके माता-पिता वधू चुनते हैं। यदि वे जीवित नहीं हैं तो राजकुमार खुद अपने सबसे बड़े सरदारों की राय से वधू चुन लेता है, जिनकी राय का सभी मामलों में बहुत महत्व होता है। अन्यथा हो भी नहीं सकता क्योंकि नाइट अथवा सामन्त के लिये और खुद राजा या राजकुमार के लिये विवाह एक राजनीतिक मामला होता है। उनके लिये विवाह नए गठबंधन करके अपनी शक्ति बढ़ाने का एक अवसर होता है। इसलिये विवाह में **राजकुल** अथवा **सामन्तकुल** के हित निर्णायक होते हैं, न कि व्यक्तिगत इच्छा या प्रवृत्ति। भला ऐसी परिस्थितियों में विवाह का निर्णय प्रेम पर निर्भर होने की आशा कैसे की जा सकती थी?

मध्य युग के नागरिक के लिये भी यही बात सत्य थी। उसे ऐसे विशेषाधिकार प्राप्त थे जो उसकी रक्षा करते थे- जैसे कि शिल्प-संघों के अधिकारपत्र और उनकी विशेष शर्तें, दूसरे शिल्प-संघों से और स्वयं अपने संघ के दूसरे सदस्यों से, तथा अपने मजदूर कारीगरों और शागिर्दों से, उसे कानूनी तौर पर अलग रखने के लिये बनायी गयी बनावटी सीमाएं। पर ये ही विशेषाधिकार उस दायरे को बहुत सीमित कर देते थे जिसमें वह अपने लिये पत्नी तलाश करने की उम्मीद कर सकता था। और यह प्रश्न कि कौन सी लड़की उसके लिये सबसे उपयुक्त है, इस पेचीदा प्रणाली में निश्चय ही व्यक्तिगत इच्छा से नहीं, बल्कि परिवार के हित से तय होता था।

अतएव मध्य काल के अन्त तक, विवाह का अधिकांशतः वही रूप रहा जो शुरू से चला आया था- यानी वह एक ऐसा मामला बना रहा जिसका फैसला दोंनों प्रमुख पक्ष - वर और वधू - नहीं करते थे। शुरू में व्यक्ति जन्म से विवाहित होता था - पुरुष स्त्रियों के एक पूरे समूह के साथ, और स्त्री पुरुषों के। यूथ-विवाह के बाद के रूपों में भी शायद इसी तरह की हालत चलती रही, बस केवल यूथ अधिकाधिक छोटा होता गया। युग्म-परिवार में

[1] **'नीबेलंगेनलीड' 10वां गीत**

[2] **'गुडरुन' - 13वीं शताब्दी का जर्मन महाकाव्य**

सामान्यतः माताएं अपनी सन्तान का विवाह तय करती है; और यहां भी निर्णायक महत्व इसी बात का होता है कि नये संबंध से गोत्र में और कबीले के अन्दर विवाहित जोड़े की स्थिति कितनी मजबूत होती है। और जब सामाजिक स्वामित्व के ऊपर निजी स्वामित्व की प्रधानता कायम होने और सम्पति को अपनी सन्तान के लिये छोड़ने का सवाल पैदा होने पर पितृ-सत्ता और एकनिष्ठ विवाह की प्रधानता कायम हो जाती है, तब विवाह पूर्ण रूप से आर्थिक कारणों से निश्चित होने लगता है। क्रय-विवाह का **रूप** तो गायब हो जाता है, पर विवाह का निश्चय अधिकाधिक इस ढंग से होता है कि न केवल स्त्री का, बल्कि पुरुष का भी, उसके व्यक्तिगत गुणों के आधार पर नहीं, बल्कि उसकी सम्पति के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है। शुरू से ही शासक वर्गों का ऐसा व्यवहार रहा है कि उनमें यह बात कभी सुनी तक नहीं जा सकती थी कि विवाह के मामले में दोनों प्रमुख पक्षों की पारस्परिक प्रवृत्तियों का निर्णायक महत्व हो सकता है। ऐसी बातें तो ज्यादा से ज्यादा किस्से-कहानियों में होती थीं, या फिर वे होती थीं उत्पीड़ित वर्गों में, जिनका कोई महत्व न था।

जिस समय, भौगोलिक खोजों के युग के बाद पूंजीवादी उत्पादन विश्व-व्यापार तथा मैनुफेक्चर के जरिये दुनिया को जीतने निकला था, उस समय यही परिस्थिति थी। यह माना जा सकता था कि विवाह का यह रूप पूंजीवादी उत्पादन के सर्वथा उपयुक्त था, और वास्तव में बात भी ऐसी ही थी। परन्तु विश्व इतिहास का व्यंग्य देखिये - उसकी गहराई तक कौन पहुंच सकता है - विवाह के इस रूप में सबसे बड़ी दरार पूंजीवादी उत्पादन ने ही डाली। उसने सब कुछ बाजार में बिकनेवाले मालों में बदलकर सारे प्राचीन एवं परम्परागत सम्बन्धों को भंग कर दिया, और पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते आये रीति-रिवाजों तथा ऐतिहासिक अधिकारों की जगह क्रय-विक्रय और ''स्वतंत्र'' करार की स्थापना की। और अंग्रेज विधिवेत्ता एच. एस. मेन को लगा कि मानों उन्होंने बड़ा भारी आविष्कार कर डाला है जब उन्होंने यह कहा कि पिछले युगों की तुलता में हमारी पूरी प्रगति इस बात में निहित है कि हम हैसियत की जगह करार को-बापदादों से विरासत में मिली स्थिति की जगह स्वेच्छापूर्वक किये करार के द्वारा स्थापित स्थिति को - मानने लगे है। यह बात, जहां तक वह सही भी है, बहुत दिन पहले ही 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में कह दी गयी थी।

परन्तु करार करने के लिये जरूरी है कि ऐसे लोग हों, जो अपने व्यक्तित्व, अपनी क्रिया-शक्ति और सम्पति का स्वतंत्रतापूर्वक जिस प्रकार चाहें उस प्रकार उपयोग कर सकें, और साथ ही जो समानता के आधार पर मिलें। ठीक ऐसे ही ''स्वतंत्र'' और ''समान'' लोगों को प्रस्तुत करना पूंजीवादी उत्पादन का एक मुख्य काम था। यद्यपि शुरू में यह बात अर्द्ध-चेतन ढंग से, और वह भी धार्मिक वेश में हुई, फिर भी लूथर और काल्विन के सुधारों के समय से ही यह पक्का सिद्धांत बन गया कि कोई व्यक्ति केवल तभी अपने कामों के लिए पूरी तरह जिम्मेदार माना जायेगा, जब इन कामों को करते समय उसे अपनी इच्छानुसार कार्य करने की पूरी स्वतंत्रता रही हो; और यह हर आदमी का नैतिक कर्तव्य है कि अनैतिक कार्य करने के लिए दबाव का विरोध करें। परन्तु विवाह की पुरानी प्रथा से यह बात कैसे मेल खाती है? पूंजीवादी विचारों के अनुसार विवाह भी एक करार होता है, कानूनी करार होता है, बल्कि कहना चाहिए कि सबसे महत्वपूर्ण करार होता है, क्योंकि उसके द्वारा दो व्यक्तियों के तन और मन का जीवन भर के लिए फैसला कर दिया जाता है। यह सच है कि रस्मी तौर पर विवाह पर करार दोनों पक्ष स्वेच्छा से करते थे - दोनों पक्षों की सहमत के बिना विवाह का करार नहीं किया जाता था परन्तु हम यह भी अच्छी तरह जानते है कि यह सहमति किस प्रकार ली जाती थी और वास्तव में विवाह कौन तय करता था। परन्तु यदि दूसरे

सभी करारों का पूर्ण स्वतंत्रता के साथ निश्चय किया जाना आवश्यक था तो फिर विवाह के करार के लिए यह क्यों आवश्यक नहीं था? दो युवा व्यक्ति, जो युगल दम्पति बनाये जाने वाले थे, क्या यह अधिकार नहीं रखते कि वे स्वतंत्रता पूर्वक अपने आप का, अपने शरीर का, और अपनी इन्द्रियों का जिस प्रकार चाहें उस प्रकार उपयोग करें? क्या यह बात सच नहीं है कि यौन-प्रेम नाइटों के प्रेम-व्यापार के कारण प्रचलित हुआ था, और क्या नाइटों के विवाहेत्तर प्रेम के विपरीत इसका सही पूंजीवादी रूप पति-पत्नी का प्रेम नहीं है? और यदि विवाहित लोगों का कर्तव्य है कि वे एक दूसरे से प्रेम करें, तो क्या प्रेमियों का यह कर्तव्य नहीं था कि वे केवल एक दूसरे से ही विवाह करें और किसी दूसरे से नहीं? और क्या इन प्रेमियों का एक दूसरे से विवाह करने का अधिकार माता-पिता, सगे-सम्बधियों और विवाह तय कराने वाले अन्य परम्परागत दलालों के अधिकार से ऊंचा नहीं था? स्वतंत्रतापूर्वक व्यक्तिगत रूप से चयन करने का अधिकार यदि बेतकल्लुफी के साथ धर्म तथा गिरजाघर में भी पहुंच गया है, तो वह पुरानी पीढ़ी के इस असहनीय दावे के सामने ही कैसे रूक सकता था कि उसे नई पीढ़ी के तन-मन, सम्पति और सुख-दुख का फैसला करने का अधिकार है?

ऐसे युग में, जिसने पुराने सारे सामाजिक बन्धनों को ढीला कर दिया था और सभी परम्परागत विचारों की नींव हिला दी थी, इन प्रश्नों का उठना स्वाभाविक ही था। एक ही बार में दुनिया पहले से करीब-करीब दस गुनी बड़ी हो गयी थी। एक गोलार्द्ध के चतुर्थांश के बजाय, अब पूरा भूमंडल पश्चिमी यूरोप के निवासियों की नजरों के सामने खुल गया था, और वह बाकी बचे सात भागों पर जल्दी-जल्दी कब्जा करने लगे। और जिस प्रकार स्वदेश की पुरानी संकुचित दीवारें गिर गयी थी, उसी प्रकार हजारों वर्ष पुरानी वे दिमागी दीवारें भी ढह गई जिन्हें मध्य-काल के परम्परागत विचार-प्रणाली खड़ी कर रखा था। मनुष्य के वाह्य-चक्षुओं और ज्ञान-चक्षुओं, दोनों के सामने एक नया, असीम क्षेत्र खुल गया था। जिस युवक को भारत की धन-सम्पदा, मैक्सिकों तथा पोतोसी की सोने-चांदी के खानों का आकर्षण निमंत्रण दे रहा था, उसे भला समाज की प्रतिष्ठा और शिल्प-संघों की परम्परागत विशेषाधिकार कैसे रोक कर रख सकते थे? यह पूंजीपति वर्ग का वीर-युग था। इसमें भी रोमांस था, इसके भी अपने प्रेम के सपने थे, परन्तु उनका आधार पूंजीवादी था, और अन्तिम विश्लेषण में, उनका उद्देश्य और लक्ष्य भी पूंजीवादी होता था।

इस प्रकार यह बात देखने में आई कि उठते हुए पूंजीपति वर्ग ने - विशेषकर प्रोटेस्टेंट देशों में, जहां तत्कालीन व्यवस्था की जड़ें सबसे ज्यादा हिली थीं - विवाह के मामले में भी करार की स्वतंत्रता को अधिकाधिक माना और उसे उपरोक्त ढंग से लागू किया। विवाह वर्ग-विवाह ही रहा, पर वर्ग की सीमांओं के भीतर दोनों पक्षों को अपना जीवन-साथी चुनने की स्वतंत्रता कुछ हद तक मिल गयी। और कागज पर, नैतिक सिद्धांतों में और कवियों की कविताओं में भी, इस सिद्धांत से अधिक सर्वमान्य और कोई सिद्धांत नहीं रहा कि जो विवाह पारस्परिक यौन-प्रेम पर तथा पति-पत्नि के सचमुच स्वैच्छिक करार पर आधारित नहीं है, वह अनैतिक है। सारांश यह है कि प्रेम विवाह मनुष्य का अधिकार घोषित कर दिया गया और वह भी droit de l'homme[3] ही न रहकर कभी-कभी अपवाद स्वरूप droit de la femme[4] भी माना जाने लगा।

[3] **droit de l'homme के दो अर्थ हैं : ''मानव अधिकार'' तथा ''पुरुष का अधिकार''**

[4] **''नारी का अधिकार''**

परन्तु एक बात में यह मानव अधिकार दूसरे सभी तथाकथित मानव अधिकारों से भिन्न था। दूसरे तमाम अधिकार, व्यवहार में शासक वर्ग तक - यानि पूंजीपति वर्ग तक - ही सीमित बने रहे और उत्पीड़ित वर्ग से - सर्वहारा वर्ग से - प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष ढंग से ये अधिकार छिने जाते रहें। पर इतिहास का व्यंग्य एक बार फिर सामने आया। शासक वर्ग अब भी कुछ निश्चित आर्थिक प्रभावों के वश में रहता है और इसलिये कुछ अपवादस्वरूप उदाहरणों में ही उसके यहां सचमुच स्वेच्छा से विवाह होते है; परन्तु उत्पीड़ित वर्ग में, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, आम तौर पर विवाह स्वेच्छा से होते हैं।

अतएव, विवाह में पूर्ण स्वतंत्रता केवल उसी समय आम तौर पर कार्यरूप ले सकेगी जब पूंजीवाद उत्पादन तथा उससे उत्पन्न स्वामित्व सम्बन्ध मिट जायेंगे और उसके परिणामस्वरूप वे सब गौण आर्थिक कारण भी मिट जायेंगे जो आज भी जीवन साथी के चुनाव पर इतना भारी प्रभाव डालते हैं। तब जाकर ही आपस में प्रेम के सिवा और कोई कारण विवाह के मामले में काम नहीं करेगा।

यौन-प्रेम चूंकि स्वभाव से एकांतिक होता है - यद्यपि यह एकांतिकता आज अपने पूर्ण रूप में केवल नारी के लिये ही होती है - इसलिये, यौन-प्रेम पर आधारित विवाह स्वभाव से ही एकनिष्ठ होता है। हम यह देख चुके है कि बाखोफेन तब कितने सही नतीजे पर पहुंचे थे जब उन्होंने कहा था कि यूथ-विवाह से व्यक्तिगत विवाह तक की प्रगति का श्रेय मुख्यतः स्त्रियों को है। हां, युग्म-विवाह से एकनिष्ठ विवाह में प्रवेश करने का श्रेय पुरुषों को दिया जा सकता है। इतिहास की दृष्टि से इस परिवर्तन का सार यह था कि स्त्रियों की स्थिति और गिर गयी और पुरुषों के लिये बेवफाई और आसान हो गयी। जब वे आर्थिक कारण मिट जायेंगे जिनसे स्त्रियों पुरुषों की हस्ब मामूल बेवफाई को सहन करने के लिये विवश हो जाती थीं - अर्थात जब स्त्री को अपनी जीविका की और इससे भी अधिक, अपने बच्चों के भविष्य की चिन्ता न रह जायेगी - और इस प्रकार जब स्त्रियों और पुरुषों के बीच सचमुच समानता स्थापित हो जायेगी, तब पहले का सारा अनुभव यही बताता है कि इस समानता का परिणाम उतना यह नहीं होगा कि स्त्री बहुपतिका हो जायेगी, बल्कि कहीं अधिक प्रभावपूर्ण रूप से यह होगा कि पुरुष सही माने में एकपत्नीक बन जायेगा।

परन्तु एकनिष्ठ विवाह से वे सारी विशेषताएं निश्चित रूप में मिट जायेंगी, जो स्वामित्व सम्बन्धों से उसके उत्पन्न होने के कारण पैदा हो गयी है। ये विशेषताएं हैं: एक तो पुरुष का आधिपत्य, और दूसरे विवाह सम्बन्ध का अविच्छेद्य रूप। दाम्पत्य जीवन में पुरुष का आधिपत्य केवल उसके आर्थिक प्रभुत्व का एक परिणाम है और उस प्रभुत्व के मिटने पर वह अपने आप खतम हो जायेगा। विवाह सम्बन्ध का अविच्छेद्य रूप कुछ हद तक उन आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम है जिनमें एकनिष्ठ विचार की उत्पत्ति हुई थी और कुछ हद तक वह उस समय से चली आती हुई एक परम्परा है जबकि इन आर्थिक परिस्थितियों तथा एकनिष्ठ विवाह के सम्बन्ध को ठीक-ठीक नहीं समझा जाता था और धर्म ने उसे अतिरंजित कर दिया था। आज इस परम्परा में हजारों दरारें पड़ चुकी हैं। यदि प्रेम पर आधारित विवाह ही नैतिक होते हैं तो जाहिर है कि केवल वे विवाह ही नैतिक मानें जायेंगे जिनमें प्रेम कायम रहता है। व्यक्तिगत यौन-प्रेम के आवेग की अवधि प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न होती है। विशेषकर पुरुषों में तो इस मामले में बहुत ही अन्तर होता है। और प्रेम के निश्चित रूप से नष्ट हो जाने पर या किसी और व्यक्ति से उत्कट प्रेम हो जाने पर पति-पत्नी का अलग हो जाना दोनों पक्ष के लिये और समाज के लिये भी हितकारक बन जाता है। अलबत्ता, लोग तलाक की कार्रवाइयों के व्यर्थ के झंझटों से बच जायें।

अतएव, पूंजीवादी उत्पादन के आसन्न विनाश के बाद यौन-सम्बन्धों का स्वरूप क्या होगा, उसके बारे में आज हम केवल नकारात्मक अनुमान कर सकते हैं, - अभी हम केवल इतना कह सकते है कि क्या चीजें तब नहीं रहेंगी। परन्तु उनमें कौन सी नयी चीजें जुड़ जायेंगी? यह उस समय निश्चित होगा जब एक नयी पीढ़ी पनपेगी - ऐसे पुरूषों की पीढ़ी जिसे जीवन भर कभी किसी नारी की देह को पैसा देकर या सामाजिक शक्ति के किसी अन्य साधन के द्वारा खरीदने का मौका नहीं मिलेगा, और ऐसी नारियों की पीढ़ी जिसे कभी सच्चे प्रेम के सिवा और किसी कारण से किसी पुरुष के सामने आत्मसमर्पण करने के लिये विवश नहीं होना पड़ेगा, और न ही जिसे आर्थिक परिणामों के भय से अपने को अपने प्रेमी के सामने आत्मसमर्पण करने से कभी रोकना पड़ेगा। और जब एक बार ऐसे स्त्री-पुरुष इस दुनिया में जन्म ले लेगें, तब वे इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं करेंगे कि आज हमारी राय में उन्हें क्या करना चाहिए। वे स्वयं तय करेंगे कि उन्हें क्या करना चाहिए और उसके अनुसार वे स्वयं ही प्रत्येक व्यक्ति के आचरण के बारे में जनमत का निर्माण करेंगे - और बस, मामला खतम हो जायेगा।

का. मार्क्स - फ्रे. एंगेल्स : संकलित रचनाएं, खण्ड तीन भाग दो, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1978, पृष्ठ 84 से 98